

बात भगवान के फोटो की

सुशील जोशी

जटा में से पानी का फव्वारा निकल रहा हो, ऊपर चाँद दिखाई दे, तो अवश्य ही शिव हैं।

धीरे-धीरे बच्चों ने मिलकर तमाम देवी-देवताओं के ऐसे प्रतीक चिन्हों की सूची बना डाली – मुँहजबानी सूची। तो बात यहाँ तक पहुँची कि देवी-देवताओं की तस्वीरों को पहचानने के लिए उनके चेहरे-मोहरे का महत्व नहीं है, महत्व उन प्रतीक चिन्हों का है जिससे वे पहचाने जाते हैं।

मैंने उनका ध्यान इस ओर भी खींचा कि देवी-देवताओं की मूर्तियों को देखें तो उनके चेहरे लगभग एक जैसे दिखते हैं (गणपति की बात तो निराली है)। पता चला कि



मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि बच्चे कितनी गूढ़ बातों पर कितनी आसानी से बातचीत कर लेते हैं। मेरे ख्याल में इसका कारण यह है कि बच्चे दुनिया को समझने की, पकड़ने की, ताड़ने की कोशिश में लगे हैं। यह कोशिश उन्हें तमाम गहराइयों में ले जाती है। जैसे, मरना क्या होता है? पैदा होने का मतलब क्या होता है? जब मैं पैदा नहीं हुआ था तो क्या यह दुनिया अलग थी वगैरह। इसी तरह का एक सवाल भगवान का भी है। भगवान है या नहीं, इसका फैसला बहुत मुश्किल काम है। जिस चीज़ का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न हो, जिसे किसी ने देखा न हो उसके अस्तित्व को लेकर क्या सोचा जाए? हाँ, यदि यह मान लें कि भगवान है तो आगे की चर्चा कुछ आसान हो जाती है। जब आप मान लेते हैं कि भगवान है, तो फिर आपको सिर्फ यह फैसला करना होता है कि वह कैसा है। और दूसरा सवाल आता है कि जब किसी ने भगवानों को देखा नहीं तो हमें कैसे मालूम है कि वे कैसे-कैसे दिखते हैं।

यही सवाल एक बार एक स्कूल में बच्चों ने मुझसे पूछा था। देवी-देवताओं को किसी ने देखा नहीं है तो फिर हम उनके इतने जीवन्त चित्र कैसे बना लेते हैं? इस सवाल के पीछे एक लम्बी बहस थी जो मेरी और उन बच्चों की चल रही थी। उनको लगता था कि ये चित्र इस बात का सबूत हैं कि किसी ने कभी तो देवी-देवताओं को देखा होगा। है ना मुश्किल सवाल?

मैं इस विषय के बारे में खास कुछ जानता नहीं था। इतिहास जानने वाले अपने कुछ मित्रों से कभी जो सुना था वही उनके सामने रखा था। तुम्हारे सामने भी रख देता हूँ। यह इस सवाल के बारे में सोचने का एक ढंग है, ज़रूरी नहीं कि यही सही हो। तुम भी सोचोगे तो कुछ और विचार निकलेंगे।

मैंने उनको बताया था कि देवी-देवताओं के ये चित्र उनके बारे में प्रचलित दन्तकथाओं या पौराणिक कथाओं के आधार पर बनाए जाते हैं। वास्तव में बात इस तरह नहीं हुई थी। मैंने पहले तो उनसे

पूछा था कि किसी देवी-देवता का चित्र सामने आने पर वे उन्हें पहचानते कैसे हैं। क्या वे उस चित्र के चेहरे को देखकर पहचानते हैं? इस मामले में बातचीत जब आगे बढ़ी तो सबने माना कि हम इसके लिए उस चित्र में कुछ चिन्हों को देखते हैं। प्रत्येक देवी या देवता के कुछ चिन्ह होते हैं जो उन्हीं से सम्बन्धित होते हैं। जैसे, हाथ में बाँसुरी हो, माथे पर मोरपंख हो, तो हम जान जाते हैं कि यह कृष्ण की तस्वीर है। इसी प्रकार से यदि कोई स्त्री शेर पर सवार हो, तो हमें पता होता है कि यह दुर्गा है। हाथ में वीणा हो तो सरस्वती है और सिर पर जटाएँ हों,



ऑस्ट्रियावासी सज्जन

की यह प्रदर्शनी देखने योग्य है।

था या नहीं मगर अब वे सोचने लगे कि शायद यह बात सही है।

फिर एक और मज़ेदार बात उभरी – तस्वीर को पहचानने में रंगों का भी बहुत महत्व है। खास तौर से कुछ देवी-देवता नीले रंग के होते हैं। मुझे भी पता नहीं था कि ब्लैक एण्ड व्हाइट छपाई के ज़माने में क्या होता होगा।

यहाँ एक और बात करते चलें। संयोग की बात है कि बच्चों के साथ इस बातचीत के कुछ ही दिनों बाद मुझे एक विद्वान व्यक्ति की तकरीर सुनने का मौका मिला। ये व्यक्ति ऑस्ट्रिया के निवासी हैं और उन्होंने भारत में शैल चित्रों पर काफी खोजबीन की है। शैल चित्र वह कला है जिसे गुफाओं में रहने वाले इन्सानों ने सदियों पहले बनाया था। अलबत्ता, उस दिन उनकी चर्चा का विषय शैल चित्र नहीं थे। उस दिन का विषय था – भारत माता की चित्रकारी। उन्होंने हमें बताया कि आज़ादी के आन्दोलन के दौरान कैसे धीरे-धीरे भारत माता के कई रूपों का चित्रण हुआ। कैसे अलग-अलग लोगों ने अपनी कल्पना के आधार पर उन्हें साकार रूप दिया था।



उन्होंने एक और भी बात बताई थी जो हमारे विषय से सम्बन्धित है। आजकल देवी-देवताओं के जिन चित्रों की हम पूजा वगैरह करते हैं, या घरों में कैलेंडर के रूप में सजाते हैं, वे सभी कमोबेश एक चित्रकार की देन हैं। उस चित्रकार का नाम है राजा रवि वर्मा। रवि वर्मा ने ही भारत में कैलेंडर कला को घर-घर में स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। वे विभिन्न देवी-देवताओं की तस्वीरें बनाते थे और उन्हें जर्मनी से छपवाकर मँगवाते थे। वर्तमान में देवी-देवताओं की छवि पर राजा रवि वर्मा के बनाए-छपवाए इन चित्रों की गहरी छाप है। उन्होंने भगवान की हमारी कल्पना को मुद्रित रूप दिया और उनकी छवियों को हमेशा के लिए स्थायी कर दिया। उस समय के कुछ चित्र इंग्लैण्ड से छपकर भी आते थे।

खैर, एक सवाल तो पूरा हुआ कि देवी-देवताओं के जो चित्र हम आजकल बहुतायत में देखते हैं वे वास्तव में बहुत पुराने नहीं हैं। ये चित्र पिछले दो-एक सौ सालों में बने हैं। और छा गए हैं। इन चित्रों को हम विशिष्ट देवी या देवता के रूप में पहचान पाते हैं तो उन पर बने कुछ प्रतीक चिन्हों की मदद से। मगर इस सवाल ने एक और सवाल को जन्म दिया (ऐसा हमेशा ही होता है, इसीलिए कुछ लोग पहले सवाल को ही रोकने का प्रयास करते हैं क्योंकि सवाल-दर-सवाल सिलसिला कहीं भी पहुँच सकता है)।

बच्चों का अगला सवाल यह था कि ये पहचान चिन्ह कैसे तय हुए, किसने तय किए, कब तय किए? यह सवाल और मुश्किल था। मैंने कहा कि पौराणिक कथाओं में जब किसी देवी या देवता का वर्णन आता है तो उसमें से कुछ पहचान चिन्ह निकल ही आते हैं। जैसे, कृष्ण के बारे में कथा है कि उन्होंने पर्वत को एक उँगली पर उठा लिया था। तो एक चित्र बन सकता है जिसमें एक व्यक्ति अपनी उँगली पर पहाड़ उठाए खड़ा है। इसे देखते ही सब कहेंगे कि यह तो कृष्ण है। हाथ में धनुष दे दें तो वही राम का चित्र हो जाएगा। यह बात हमें लोककथाओं, दन्तकथाओं और पौराणिक कथाओं से मालूम होती है।

वैसे देखें तो आजकल के कार्टूनकार इस तरीके का उपयोग खूब करते हैं। वे हर नेता-अभिनेता के डील-डौल में से कुछ प्रमुख बातें निकाल लेते हैं। जब ये चीज़ें बनाई जाती हैं तो वह व्यक्ति ही दिमाग में आता है। यानी चित्र तो कागज़ पर होता है मगर उसे पहचानने का काम दिमाग करता है।

मुझे जितना पता था या जितना मैं सोच पाया वह इतना ही था। मेरी बहुत इच्छा थी कि इस विषय के जानकार इस पर लिखें ताकि हम सबका भला हो। जब बहुत आग्रह के बाद भी उन्होंने नहीं लिखा तो मैंने सोचा छोटा मुँह बड़ी बात हो ही जाए।